IJAER/ July-August 2022/Volume-11/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

हिंदी और अंग्रेजी में लिखे गए आधुनिक भारतीय उपन्यासों का अध्ययन

अपराजिता शांडिल्य
शोधार्थी कलिंगा विश्वविद्यालय नया रायपुर

डॉ अजय कुमार शुक्ल
प्राध्यापक हिन्दी कलिंगा विश्वविद्यालय नया रायपुर

सार

उपन्यास की तकलीफ बहुत कुछ व्यक्ति के जन्म होने की प्रसव पीड़ा से जुड़ी है। निर्मल वर्मा का यह कथन उपन्यास की प्रकृति और उससे जुड़े प्रश्नों पर प्रकाश डालता है। यदि गद्य साहित्य आधुनिकता का वाहक है तो उपन्यास उस गद्य में आधुनिक मनुष्य को वहन करने वाला भाव। उपन्यास ऐतिहासिक दृष्टि से इसी व्यक्ति के जन्म के साथ नत्थी है, शायद इसीलिए इसे आधुनिक काल का महाकाव्य कहा गया है। आधुनिक युग के अंग्रेजी और हिन्दी के उपन्यासों का इतिहास एक रोचक और महत्वपूर्ण विषय है। आधुनिक युग के प्रारंभिक दशकों में, अंग्रेजी उपन्यास महत्त्वपूर्ण उपन्यास लेखकों जैसे चार्ल्स डिकेंस, जेन ऑस्टिन, और भ्रम स्टोकर द्वारा लिखे गए उत्कृष्ट कामों के बारे में जाना जाता है। इन उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक मुद्दों को व्यापक रूप से परिदृश्य में लाया गया था। वे समाज के विभिन्न पहलुओं पर नजर रखते हुए मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उपयोग करते थे।

मुख्य शब्दरू *आधुनिक भारतीय उपन्यासों ए हिंदी और अंग्रेजी के उपन्यास*

परिचय

उपन्यास की तकलीफ बहुत कुछ व्यक्ति के जन्म होने की प्रसव पीड़ा से जुड़ी है।৳ निर्मल वर्मा का यह कथन उपन्यास की प्रकृति और उससे जुड़े प्रश्नों पर प्रकाश डालता है। यदि गद्य साहित्य आधुनिकता का वाहक है तो उपन्यास उस गद्य में आधुनिक मनुष्य को वहन करने वाला भाव। उपन्यास ऐतिहासिक दृष्टि से इसी व्यक्ति के जन्म के साथ नत्थी है, शायद इसीलिए इसे आधुनिक काल का महाकाव्य कहा गया है।

व्यक्ति अपनी सामुदायिक सदस्यता के बजाय अपनी बिकमिंग से परिभाषित होने लगा। यहीं से आधुनिक व्यक्ति का जन्म होता है। आधुनिक व्यक्ति का यह जन्म औद्योगिक क्रांति और पूँजी के विजन से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

इंग्लैण्ड और क्रमशरू यूरोप में आधुनिक श्व्यक्तिश का उत्थान औद्योगिक क्रान्ति और उपनिवेशवाद के साथ– साथ हुआ। श्अंग्रेजीश का लैटिन से भिन्न एक भाषा के रूप में विकास और उसके

साहित्य का प्रसार, श्साहित्यश का विश्वविद्यालयों में एक अनुशासन के रूप विकसित होना ठीक उसी तरह हुआ जैसे उपनिवेशों का विस्तृत साम्राज्य औद्योगिक क्रांति के बाजार के रूप में तब्दील होता गया। इसमें प्रबोधन से जुड़े विचारों एवं फ्रांसीसी क्रान्ति जैसे परिवर्तनों ने भी योगदान दिया।

औद्योगिक क्रान्ति ने व्यक्ति को अपने समूह से विलग कर उत्पादन की ऐसी पद्धति से जोड़ा, जिसके उपभोग से उसका सम्बन्ध प्रायः नहीं था। उत्पादन की इस पद्धति के परिवर्तन ने जिस मनुष्य को जन्म दिया वह अपनी सुविधायें, चिंतायें समूह में नहीं कर सकता है। यही विशिष्ट मनुष्य उपन्यास की विषय वस्तु है। उपन्यास ने इस मनुष्य की रोजमर्रा की चिंताओं को अपने जीवद्रव्य के रूप में अपनाया ।

हिन्दी में भी एक विधा का विकास अंग्रेजों के आगमन के फलस्वरूप श्आधुनिकताश के साथ –साथ हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने साहित्य के इतिहास में लिखते हैं –

अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले पहल हिन्दी में लाना श्रीनिवास दास का परीक्षा गुरु ही निकला। अंग्रेजी ढंग की श्आधुनिकताश ने जिस ग्रहण और त्याग के द्वंद्व को जन्म दिया था, उपन्यास भी इससे इतर नहीं था। आधुनिकता भारत में एक ऐसी शक्ति द्वारा बनायी गयी थी, जिससे गुलामी और दमन को अपना औजार बनाया था। भारतीय बौद्धिक वर्ग की प्रतिक्रियायें एकदम उलझी हुई थीं। एक तरफ तो वह उनसे प्रभावित होता था, उन्हें स्वीकार करता था दूसरी तरफ ठीक उसी समय वह उनका निषेध भी करना चाहता था। हिंदी उपन्यासों के विकास में भी अर्न्तद्वन्द्व की यह छाया रेखांकित की जा सकती है।

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में आगे रेखांकित किया है कि –

पीछे तो बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, बाबू रामकृष्ण वर्मा ने बांग्ला के उपन्यासों की जो परम्परा चलाई वह बहुत दिनों तक चलती रही । पुर्नजागरण की धारा भी पहले–पहल बंगाल में फूटी और फिर हिंदी क्षेत्र में पहुंची। बांग्ला उपन्यासों का आदि उपन्यास बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय का ‘आनन्द मठश है। जिसने बांग्ला की नहीं बल्कि उस पूरे युग के साहित्य को प्रभावित किया। भारतीय वर्तमान में तो पराजित थे किन्तु उनकी चेतना पराजय से संघर्षरत थी । इसलिए उन्होंने अपनी मुक्ति स्वर्णित श्अतीतश और गौरवशाली भविष्य में देखी। आनन्द मठ इसी अतीत के सहारे आजादी के संघर्ष की गाथा और प्रकारांतर के राष्ट्रवादी चेतना को प्रतिबिम्बित करता है ।

हिन्दी में बांग्ला साहित्य के प्रभाव से ऐतिहासिक उपन्यासों की जो धार चली वह स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ चलती रही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बाबू देवकी नन्दन खत्री को हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यासकार माना है।

उस दौर में तिलस्मी अय्यारी के उपन्यासों की धूम हो गयी । सम्भवतः एक दमित राष्ट्र ने फंतासी में ही अपनी चेतना की मुक्ति खोजी । आधुनिक – लिखा वर्ग जो दास्ता की बेड़ियों को महसूस करता था, ऐसी महामानवों पढ़ा की कथाओं और घटनाओं में त्राण पाता था ।

साहित्यिक भाषा के विविध रूप

आधुनिक आर्य भाषाओं में हिंदी अत्यधिक समृद्ध एवं सर्वाधिक लोगों के द्वारा बोली ओर समझी जाने वाली भाषा है। इसे देश की राष्ट्रभाषा व राजभाषा के पद पर अधिष्ठित होने का गौरव प्राप्त है। इसका प्रयोग देश के साथ–साथ विदेशों में भी होता है । अतः इसका एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप भी विकसित हो गया है। राजभाषा होने के नाते इसके विविध प्रयोजनमूलक रूप भी अस्तित्व में आ गए हैं, जिनका विज्ञान, विधि, वाणिज्य, प्रशासन, कार्यालय, संचार आदि क्षेत्रों में प्रयोग होता है । इन क्षेत्रों में भाषा का तथ्यात्मक व अभिधात्मक रूप मिलता है। परंतु साहित्य–सृजन में परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा का प्रयोग होता है। सामान्य बोलचाल की भाषा से ही साहित्यिक भाषा का उद्भव होता है। कल्पना, नाविन्य, लक्षणा – व्यंजन, मुहावरे आदि के प्रयोग से सृजनात्मक साहित्यिक भाषा का रूप विकसित हो जाता है और भाषा को साहित्यिक भाषा की सत्ता की स्वीकृति मिल जाती है। साहित्यिक भाषा में रागात्मकता का गुण मुख्य रूप से विद्यमान रहता है। साहित्यिक भाषा का लक्ष्य सौंदर्यानुभूति और रसास्वादन होता है। साहित्यिक भाषा को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं रू– (क) काव्य भाषा (ख) गद्य – भाषा ।

उद्देश्य

1. आधुनिक युग के हिन्दी और अंग्रेजी के उपन्यास के इतिहास का अध्ययन करना
2. आधुनिक हिंदी और अंग्रेजी की पृष्ठभूमि का अध्ययन करना

काव्य भाषा

इसे काव्य – भाषा के साथ पद्यात्मक भाषा भी कह सकते हैं। संस्कृत के आचार्यों ने कव्य और साहित्य को पर्यायवाची माना था । इसीलिए उन्होंने गद्य में रचित साहित्य को भी गद्य काव्य की संज्ञा दी थी। परंतु आज श्साहित्यश शब्द अंग्रेजी के श्लिट्रेचरश (स्पजमतंजनतम) के पर्याय के रूप में स्वोकार किया जाने लगा है । अंग्रेजी की परम्परा में साहित्य के (संक्षिप्त रूप में) दो रूप माने जाते हैं– (क) काव्य (च्वमजतल) (ख) गद्य (चतवेम) । दोनों की भाषागत अभिव्यक्ति और स्वरूप

में अंतर है। काव्य–भाषा को पद्यात्मक भाषा कहने में कुछ सावधानी की आवश्यकता है। संस्कृत में ज्ञान–विज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण, काव्यशास्त्र, गणित, दर्शन आदि विषयक ग्रंथ प्रायः पद्यात्मक भाषा में लिखे जाते थे। क्या ये सब काव्य माने जायेंगे, निश्चित रूप से नहीं। क्योंकि इनकी भाषा तथ्यात्मक है । पद्य में लिखने मात्र से कोई रचना काव्य नहीं हो जाती । काव्य के लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही भाषा का प्रयोग होता है। काव्यात्मक भाषा में सौंदर्यानुभूति और रसानुभूति करवाने की शक्ति होनी चाहिए । भावानुकूल रमणीय शब्दों का चयन, लक्षणा – व्यंजना जैसी शब्द–शक्तियों का चारु प्रयोग, कथन –भंगिमा, आलंकारिकता, संगीतात्मकता (गेयता), छंदबद्धता, प्रेषणीयता, औचित्य, लयात्मकता, प्रतीकात्मकता, बिम्ब या चित्र अंकन करने की क्षमता आदि काव्य – भाषा के आवश्यक गुण हैं।

संभव है कि आधुनिक मुक्त छंद कविता के समर्थक एवं प्रशंसक उपर्युक्त काव्य–भाषा की कतिपय विशेषताओं से सहमत न हों, परंतु यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि काव्य (पद्य) और गद्यात्मक रचनाओं में भाषा के स्तर पर मौलिक भेद है । पद्य और गद्य का भेदक लक्षण है–

लयात्मकता एवं गेयता । केवल गद्य को तोड़कर छोटी–बड़ी पंक्तियाँ बना देना और घोषणा करना कि इसमें अर्थ लय है, अतः काव्य है, कितना विचित्र लगता है। हां, इतना अवश्य है कि आजकल इस मुक्त छंद के चलन से कवि बनना बड़ा सहज हो गया है।

गद्य–भाषा

पद्य की तुलना में गद्य का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है । काव्य में प्रबंध काव्य (महाकाव्य, खण्डकाव्य) और गीति – मुक्तक दो प्रमुख विधाएँ हैं, परंतु गद्य में उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक, आलोचना, आत्मकथा, जीवनी, रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखा – चित्र, डायरी, पत्र–पत्रिकाएँ, गद्य–गीत जैसी अनेक गद्य–विधाएँ प्रचलित हैं ।

इनके अतिरिक्त प्रयोजनमूलक (कामकाजी) हिंदी की अनेक विविध विधाओं का, समाचार–पत्रों आदि सभी का माध्यम गद्य है । यों तो साहित्यिक गद्य भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं। इसमें संस्कृतनिष्ठ भाषा के साथ फारसी – अरबी मिश्रित शब्दावली का प्रयोग भी रहता है । अधुनातन तो बहु प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को भी गद्य–लेखकों ने आत्मसात् कर लिया है। काव्य भाषा के समान गद्य–भाषा में भी कथन–भंगिमा के दर्शन हो जाते हैं । भाषा का मानक या परिनिष्ठित (व्याकरण सम्मत) रूप सर्वत्र विद्यमान रहता है। बोलचाल में भी हम गद्य का ही प्रयोग करते हैं, यद्यपि यह गद्य साहित्यिक गद्य के समान परिष्कृत या मानक नहीं होता । वस्तुतः विधा के अनुरूप ही गद्य रूप का साहित्य में आग्रह रहता है और उसी के अनुसार वाक्य – विन्यास का गठन किया जाता है।

विषयानुकूल परिष्कृत मानक गद्य भाषा में कहीं तर्क, कहीं प्रवेग, कहीं सुझाव रहता है तो कहीं भाषा सूत्रात्मक होती है, कहीं व्याख्यात्मक । गद्य लेखन पद्य की तुलना में अधिक कठिन होता है, जिसमें लेखक – प्रतिभा की परख होती है। इसीलिए संस्कृत परम्परा में एक उक्ति प्रचलित है शगद्यं कविनां निकषं वदन्तिश अर्थात् गद्य कवियों (लेखकों) की प्रतिभा की कसौटी है । इसी अधार पर संस्कृत में सुबंधु व बाणभट्ट जैसे लेखक आदर्श माने जाते हैं। हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नगेन्द्र मानक गद्य लेखन के कारण अग्रगण्य हैं ।

नाट्य भाषा

काव्य की प्रभान्विति छंद, ताल, लय, गेयता तथा उपयुक्त भाषा जैसे तत्त्वों पर निर्भर है। यों तो नाटक में भी संस्कृत परंपरा के अंतर्गत संगीत की अपेक्षा को देखते हुए पद्यों का प्रयोग होता था द्य हिंदी के प्रारंभिक नाटकों में, या यों कहें, प्रसाद काल तक नाटकों में गीतों का प्रचुर प्रयोग होता था। आज भी चलचित्रों में गीतों की योजना होती है। दर्शकों के मनोरंजन के लिए यह आवश्यक भी है। परंतु आज दृश्य–श्रव्य विधा होते हुए भी नाटक को गद्य रचना ही माना जाता है। हमें विदित है कि नाटक में प्रभावोत्पादकता के लिए भाषा की तुलना में प्रस्तुतीकरण पर निर्भरता अधिक रहती है। ष वस्तुतः नाटक पढ़ने की वस्तु कम, देखने की अधिक है। बहुत से व्यक्तियों के लिए तो नाटक देखना अत्यधिक औत्सुक्यवर्धक तथा स्मरणीय होता है।ष्ष नाटक में अभिव्यक्त अनुभूतियों को साकार करने के लिए विशिष्ट भाषा का प्रयोग होता है और इसके लिए मंच, अभिनेता, निर्देशक, अभिकल्पक, रूप–सज्जाकर्ता, नृत्य, संगीत, वाद्य आदि अनेक स्थूल बाह्य तत्त्वों की योजना होती है।

नाटक दृश्य–श्रव्य माध्यम है। उसका उद्देश्य असंख्य दर्शकों, श्रोताओं, पाठकों का मनोरंजन करना है और अपना संदेश भी सम्प्रेषित करना है। दर्शकों श्रोताओं में शिक्षित–अशिक्षित, बाल–वृद्ध, बालाएँ – महिलाएँ, ग्रामीण–नगरीय सभी वर्गों के व्यक्ति रहते हैं। इनकी प्रकृति, रुचि, आकांक्षा विभिन्न होती है। नाटककार के समक्ष यह समस्या रहती है कि वह कैसी भाषा अपनाए, जिससे भाव– सम्प्रेषण संभव हो और दर्शक–श्रोता में भावात्मक अनुकूलत्व उत्पन्न किया जा सके। नाटक में सरल, स्पष्ट और संक्षिप्त भाषा को पसन्द किया जाता है। भाषा में सहजता, स्वाभाविकता हो ।

संक्षिप्त वाक्यावली हो, परंतु भाषा सामासिक न होकर व्यास – प्रधान होनी चाहिए । भरतमुनि ने इसीलिए नाट्य भाषा को मृदु ललित पदों से युक्त तथा गूढ़ शब्दार्थों से रहित होना आवश्यक माना था, जो जनता (दर्शकों) के लिए सुबोध हो ।

मृदु ललित पदाढयं गूढ शब्दार्थहीनं

जनपद सुख बोध्यं युक्तिमन्नृत्य योज्यम् ।

बहुरसकृतमार्ग संधिसंधानयुक्तम्

स भवति शुभकाव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम् द्यद्य

आज नाटक के कई रूप हमारे समक्ष हैं जैसे– पाठ्य, केवल श्रव्य, दृश्य–श्रव्य नाटक । यों तो नाटक की सफलता का आधार उसकी मंचीय प्रस्तुति है परंतु मंच के अभाव में शिक्षित पाठक उसका पढ़कर भी आस्वादन कर सकते हैं। लेखक भी पाठक का ध्यान रख प्रेषणीय भाषा का प्रयोग करते हैं, परंतु प्रसाद जैसे नाटककार भी हैं, जो परिनिष्ठित, परिष्कृत भाषा का प्रयोग आग्रह के साथ करते हैं। केवल श्रव्य नाटकों से अभिप्रायः उन नाटकों से है जो रेडियो पर प्रसारित होते हैं जबकि श्रव्य–दृश्य नाटकों का संबंध रंगमंच पर अभिनीत नाटकों और चलचित्रों से है। इन दोनों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है, जो श्रोता दर्शक का ध्यान आकृष्ट करे ।

नाटक की भाषा पर विचार करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि नाटक चाहे रेडियो नाटक हो, मंचीय हो या चलचित्र हो, इन सब में प्रस्तुति के समय नाटक की भाषा–शैली में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाता है।

पट – कथा लेखक नाटक की कथा में पुनः आवश्यक संशोधन करता है । संवाद–लेखक पुनः पात्रों के संवाद लिखता है, जिससे संवाद संक्षिप्त, चुटीले, क्षिप्र, पात्रानुकूल, परिस्थिति के अनुरूप, घटना क्रम को गति दे सकने में सक्षम, पात्रों के चरित्र के उद्घाटन में सहायक होने के साथ–साथ लेखक के संदेश को स्पष्ट कर सकने में भी सक्षम हों । श्रव्य – नाटकों (रेडियो नाटकों) में संगीत ध्वनियों का योगदान रहता है ।

विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति स्वरों के आरोह–अवरोह पर अवलम्बित होती है। इन शब्दों से ही श्रोता अपनी कल्पना में घटना या व्यक्ति का चित्र बनाते हैं । वस्तुतः रेडियो नाटक एक स्वतंत्र कला है, जो निश्चय ही श्रम साध्य है। नीरसता और अस्पष्टता अनुभव होते ही श्रोता रेडियो बंद कर देगा । रेडियो नाटक का श्रोता समूह न होकर व्यक्ति होता है, अतः लेखक को व्यक्ति – रुचि को प्रमुखता देनी होती है। रेटियो – नाटकों में दृश्य योजना नहीं होती। घुड़दौड़, जहाज, रेल आदि सबकी ध्वनि से ही प्रस्तुति देनी होती है ।

चलचित्र के रूप में प्रस्तुत नाटकों में भाषा की दृष्टि से अनेक परिवर्तन होते हैं। पहले मूल लेखक की भाषा, फिर कथा लेखक तथा संवाद – लेखक आदि की भाषा, पुनः निर्देशक के संशोधन और इन सबके पश्चात् अभिनेताओं की रुचि – उच्चारण आदि भाषा को नवीन रूप दे देते हैं। अन्य

भाषाओं की फिल्मों की भाषा को भी नई भाषा में श्डब (क्नइ) किया जा सकता है। सिनेमा, टेलीविजन, वीडियो आदि दृश्य–श्रव्य विधाएँ हैं। छायाकारी (फोटोग्राफी) से जुड़ने के साथ अब नाटक देश–विदेश के जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। अब तो प्रबन्ध – काव्य, कहानी, उपन्यास किसी का भी रूपान्तरण फिल्म (दृश्य–श्रव्य) रूप में करना संभव है । श्रामायणश्, श्महाभारतश् इसके उदाहरण हैं। वस्तुतः अब नाटकों में मूल साहित्यिक भाषा न होकर सामान्य व्यवहार की जन भाषा होती है ।

निबंध भाषा

निबंध आधुनिक साहित्य की एक विशिष्ट, उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण गद्य विधा है। विचारों के सम्प्रेषण के लिए प्रस्तुत विधा सर्वाधिक सुलभ तथा सुगम मानी जा सकती है। निबंध शब्द संस्कृत से गृहीत है। इस की व्युत्पत्ति श्निश् पूर्वक श्बन्धश् से हुई है।

इसका अर्थ है – सुव्यवस्थित रूप से बंधा हुआ। निबंध शब्द का प्रयोग अंग्रेजी में श्एस्सश् (ैंल) के पर्याय के रूप में होता है। 18वीं शती तक अंग्रेजी साहित्य में मोनटेन एवं बेकन के निबंधों में सूत्रात्मकता, सुसम्बद्धता के अभाव को देखकर डॉ. जॉनसन ने कहा था – निबंध स्वछन्द मन की वह तरंग है जिसमें तारतम्य और सुगठन न होकर विशृंखलता की प्रधानता रहती है। अंग्रेजी के प्रारंभिक निबंधों की विशेषताओं को उपर्युक्त परिभाषा में प्रकट किया गया । शनैः शनै अंग्रेजी निबंधों में परिपक्वता, सम्बद्धता, वैयक्तिकता तथा विषय का तारतम्य आता गया ।

हिंदी में निबंध लेखन आधुनिक काल में भारतेन्दु से ही प्रारंभ हो सका । खड़ी बोली के गद्य–शैली के रूप में स्थापित होने से, कुछ अंग्रेजी के प्रभाव के कारण और मुख्यतः युगीन परिस्थितियों के फलस्वरूप हिंदी में निबंध रचना प्रारंभ हुई।

परिभाषा में बांधने के प्रयास में आचार्य श्याम सुंदर दास ने निबंध को आख्यायिका और गीति – रचना के बीच की वस्तु कहा है। आचार्य शुक्ल ने मौलिक एवं नवीन विचार प्रकट करते हुए कहा है कि श्यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबंध गद्य की कसौटी है । भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही देखा जाता है। शुक्ल जी ने व्यक्तित्त्व की झलक एवं विचारों की तारतम्यता को निबंध के प्रमुख गुण कहा है । ष शुक्ल जी साहित्यिक निबंधों में निबंध के सभी तत्त्वों को उचित स्थान देने के पक्ष में हैं। जैसे– बुद्धि तत्त्व, भाव तत्त्व (हृदय तत्त्व), कल्पना तत्त्व, भाषा–शैली तत्त्व, वैयक्तिकता, स्वच्छन्दता आदि। शुक्ल जी की मान्यता है कि निबंधकार जिधर चलता है, उधर अपनी सम्पूर्ण मानसिक सत्ता के साथ अर्थात् बुद्धि और भावात्मक हृदय, दोनों लिए हुए । शुक्ल जी ने अपनी रचना चिंतामणि भाग –1 के मुख पृष्ठ पर निबंध के विषय में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं, ष्इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को साथ लेकर ।

कथा–साहित्य की भाषा

किसी ऐतिहासिक – पौराणिक, लोक– प्रसिद्ध अथवा काल्पनिक कथा को लेकर गद्य में लिखा गया साहित्य ही कथा – साहित्य कहलाता है । इसे आख्यान – साहित्य भी कहा जा सकता है। मनोरंजन, जन–रंजन की अपूर्व क्षमता होने के कारण कथा–कहानी कहने की परंपरा मानव–सभ्यता के आदिकाल से चली आ रही है । भाषा का लिखित रूप न होते हुए भी मौखिक रूप में ही नानी – दादी की परियों, राक्षसों, पशु–पक्षियों, जादूगरों की अद्भुत काल्पनिक कथाएं सभी जातियों में मिलती हैं। गुहा – चित्रों से इसका प्रमाण मिलता है । सभ्यता–संस्कृति, भाषा तथा साहित्य के अधुनातन समृद्धि के युग में कथा – साहित्य के दो रूप (विधाएँ) मिलते हैं – (क) कहानी (ख) उपन्यास द्य भाषा की दृष्टि से इन पर पृथक–पृथक विचार करना उचित होगा ।

कहानी की भाषा

कहानी, जिसे पहले आख्यायिका भी कहा जाता था, लघु एवं सीमित आकार की रचना है, जो अब मानव – केन्द्रित हो गई है। अब कहानी में कुतूहल के स्थान पर समकालीन समस्याओं का उद्घाटन और समाधान मुख्य लक्ष्य बन गया है। इसका कथानक लघु होता है, जिसे 20 मिनट से लेकर आध घण्टे में पढ़ा जा सके। इसका प्रारंभ और अंत विशेष प्रभावक होता है। इस संदर्भ में डॉ. श्याम सुंदर दास का कथन है – श् आख्यायिका (कहानी) एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है। कहानी की भाषा–शैली पर इनकी टिप्पणी है– श्श्रेष्ठ आख्यायिका की शैली ध्वनि – गर्भित, पुष्ट और वेगवती होती है। तथा उसमें शिथिल व्यवहार की योजना कदापि नहीं की जाती। गुलाब राय का मत है– श्छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है, जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति – केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक परंतु कुछ–कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान – पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहलपूर्ण वर्णन हो । ष निश्चय ही कहानी एक स्वतःपूर्ण लघु रचना है तथा इसका एक उद्देश्य रहता है।

रसात्मकता इसका आवश्यक गुण है। यों कहें कहानी लघु गद्य–रचना है, जिसमें जीवन के किसी पक्ष या स्थिति का सरल भाषा में, सरस एवं सजीव चित्रण होता है। कहानी का प्रभाव उसकी भाषा पर अधिक निर्भर है, जो रचयिता की मान्यताओं के अनुरूप होती है । प्रायः पात्रानुकूल, कथानुकूल और भावानुकूल बोधगम्य भाषा वरेण्य होती है। वह संस्कृत की तत्सम् शब्दावली से युक्त भी संभव है और फारसी – अरबी–अंग्रेजी शब्दावली से मिश्रित भी हो सकती है । वातावरण के चित्रण के लिए क्षेत्रीय भाषा प्रयोग भी अपनाए जा सकते हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग स्वाभाविकता एवं सटीक अर्थ– द्योतन के लिए अच्छा रहता है। इस संबंध में प्रेमचंद के विचार द्रष्टव्य हैं– कहानी की भाषा बहुत ही सरल और सुबोध होनी चाहिए। उपन्यास वे लोग पढ़ते हैं जिनके पास रुपया हैय और समय भी उन्हीं के पास रहता है जिनके पास धन है । आख्यायिका (कहानी)

साधारण जनता के लिए लिखी जाती है जिसके पास न धन है न समय। कहानी में वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी कोई भी शैलो अपनाई जा सकती है परंतु भाषा सरल एवं सुबोध ही रहनी चाहिए ।

आज की शनई कहानीश कई रूपों में नई है। इसमें घटना का उतना महत्त्व नहीं है, जितना अभिव्यक्ति का है। कथानक, पात्र – चरित्र–चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषा–शैली और उद्देश्य प्रभृति छः तत्त्वों की श्क्राफ्टमनशिपश समाप्त हो गई है। अब कहानी के दो तत्त्व माने जाते हैं –वस्तु और शिल्प कहानी की एक शलघु–कथाश शैली भी विकसित हो गई है। नई कहानी में जीवन की यथार्थ प्रस्तुति का, या यों कहें नग्न – यथार्थ के प्रस्तुतीकरण का आग्रह है । इसमें जीवन, समाज, युगबोध एवं भावबोध के परस्पर संबंधों का तथा उनसे उत्पन्न प्रतिक्रिया का कलात्मक चित्रण है। संकेतात्मकता इसकी रचना–प्रक्रिया की विशेषता है। इसमें परम्परागत भाषा – शिल्प का बहिष्कार करदिया गया है। इसमें अनलंकृत, सपाट, सीधी भाषा में सूक्ष्म बात कह देने का प्रयास है।

भाषा में स्वदेशी, विदेशी, तत्सम तद्भव, देशज सभी प्रकार के शब्दों को सहजता से अपनाया जाता है। वाक्य – विन्यास में व्याकरण की अवहेलना सहज है । गाली–गलौच, अशिष्टता लिए हुए शब्दों का प्रयोग भी हो सकता है । वाक्यों को अधूरा छोड़कर, बिन्दुओं को लगाकर गाली की अश्लोलता से बचाव का भी प्रयास देखा जाता है।

समसामयिक यथार्थ की जटिलता एवं परिवर्तनशीलता के चित्रण के लिए यह आवश्यक भी है। वस्तुतः कहानी – लेखक अपनी बात कहना चाहता है। सम्प्रेषण के लिए भाषा का क्या रूप हो, लेखक इसकी चिन्ता नहीं करता ।

उपन्यास की भाषा

व्युत्पत्ति की दृष्टि से उपन्यास शब्द श्उपश पूर्वक श्न्यासश दो शब्दों से बना है । श्उपश का अर्थ है– निकट या सामने और श्न्यासश का अर्थ है स्थापना, क्षेपण । अतः उपन्यास का अर्थ हुआ – विषय का स्पष्ट रूप से प्रकाशन या स्थापन । जीवन की गुत्थियों एवं समस्याओं को स्पष्ट रूप में (निकटता से) प्रस्तुत करना ही उपन्यास शब्द का आशय है । भरतमुनि ने श्नाट्यशास्त्रश में श्उपन्यासः प्रसादनम्श अर्थात् श्उपन्यास चित्त को हर्षित करने के लिए हैश कहा है।ष आज हिंदी में उपन्यास अंग्रेजी के नॉवेल (छवअमस) शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है– नवीन । संस्कृत में इसके (उपन्यास) लिए श्कादम्बरीश शब्द भी मिलता है । वास्तविक जीवन का काल्पनिक चित्र होने के कारण उपन्यास आज काव्य और नाटक की तुलना में नवीन, लोकप्रिय तथा प्रभावक है। इसी आधार पर डॉ. श्याम सुंदर दास ने कहा है दृ श्उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है। ष

प्रेमचंद भी उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मानते हैं। ष्मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मान सकता हूँ । मानव – चरित्र पर प्रकाश डालना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है ।ष् वस्तुतः उपन्यास पाठकों के मनोरंजन के लिए लिखित यथार्थ जीवन का काल्पनिक वृत्तान्त है । मानव – चरित्र पर प्रकाश डालना इसका लक्ष्य है। बाबू गुलाबराय ने उपन्यास की रूपरेखा (परिभाषा) इस प्रकार प्रस्तुत की है– ष् उपन्यास कार्य–कारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव–जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है। उपन्यास को गद्यात्मक प्रबंधकाव्य (महाकाव्य) कहें तो अनुचित न होगा ।

महाकाव्य के सभी तत्त्व – वस्तु, नेता और रस (भारतीय परंपरा अनुसार), जिन्हें पाश्चात्य परंपरा में कथानक, पात्र, सम्वाद, वातावरण, भाषा–शैली और उद्देश्य कह कर विस्तार दिया गया है, उपन्यास में यथावत् मिलते हैं । परंतु ये तत्त्व परस्पर घुले–मिले रहते हैं ।

इन्हें शरीर के अंग–प्रत्यंग, त्वचा आदि की भाँति पृथक करना संभव नहीं है। मुख्य बात लेखक के मन्तव्य को पाठक तक सम्प्रेषित करने की है और सम्प्रेषण का माध्यम भाषा हैं । उपन्यास – लेखक की सफलता भाषा के समुचित प्रयोग पर निर्भर है । उपन्यास भाषा आधारित कला है क्योंकि उपन्यास में भाषा की समस्त कलाओं का प्रदर्शन होता है द्यष्

उपन्यास की भाषा के संबंध में सतर्क रहने की आवश्यकता है । उपन्यास का फलक (पटल) अत्यधिक विस्तृत होता है। उपन्यास में लगभग सभी वर्गों के लोगों का प्रतिनिधित्व होता है। सामान्य – विशिष्ट, धनी–निर्धन, मालिक – मजदूर, किसान – कामगार, मूर्ख – पंडित (ज्ञानी), ग्रामीण – नागरिक, अधिकारी – प्रजाजन, शिक्षित–अशिक्षित, स्त्री–पुरुष, पंडित – पादरी, मौलवी, हिंदू–मुस्लिम आदि सभी वर्गों के पात्र होते हैं । इन सब की स्थिति के अनुसार भाषा में विविधता का पुट (भेद) होना स्वाभाविक है। सभी वर्गों के अपने व्यावसायिक शब्द होते हैं। झोंपड़–पट्टियों और फुटपाथों के निवासियों की भाषा सम्भ्रान्त उच्चवर्गीय समाज की भाषा से अवश्य भिन्न होगी । संस्कार एवं जाति–धर्म के अनुसार भाषा संस्कृतनिष्ठ या फारसी – अरबीनिष्ठ संभव है। आंचलिक तथा बाजारू भाषा का भी मिश्रण हो सकता है। लेखक पाठक वर्ग का भी ध्यान रखकर सामान्य–स्तरीय भाषा की ओर भी उन्मुख हो सकता है। इसके अतिरिक्त परिस्थितियों, घटनाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी उपन्यास में होता है ।

निष्कर्ष

एक सामाजिक श्रेणी के रूप में समुदाय आवश्यक रूप से पूर्व–आधुनिक नहीं है। यह भारत में समकालीन श्आधुनिकताश के एक सक्रिय घटक के रूप में मौजूद है और इसे एक मौलिक उपकरण

या सामाजिक वास्तविकता को समझने के साथ–साथ उप–महाद्वीप में उपन्यास में इसके प्रतिनिधित्व के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, जो कि विशेषाधिकार के पूर्व–पूंजीवादी रूपों के आसपास बनाया गया है। परंपरा, स्थिति के माध्यम से जन्म और शक्ति। ये समुदाय प्रत्येक मनुष्य के आवश्यक गुण में विश्वास के आधार पर लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों के साथ वर्ग करते हैं। सामाजिक विकास की प्रकृति दोनों ही औपनिवेशिक काल के बाद व्युत्पन्न हुई है। औपनिवेशिक काल के बाद यह पहचानने के लिए मजबूत स्थितियां पैदा करता है कि व्यक्ति वास्तव में समुदाय के भीतर स्थित था, न कि कई अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक संबंधों के एक समूह के भीतर, यह भी समुदाय का एक अविभाज्य हिस्सा है, जहां उसका व्यक्तित्व समूह लोकाचार द्वारा ढाला गया है। यहां व्यक्ति और समूह लोकाचार के बीच टकराव एक विन्यास में परिलक्षित होता है जो पश्चिम में शास्त्रीय उपन्यास से बहुत अलग है।

संदर्भ

1. डॉ. वर्मा भगवानदास–कहानी की संवेदनशीलता सिद्धांत और प्रयोग– पृष्ठ, 70
2. सं. श्री. नवलजी– नालंदा विशाल शब्दसागर– पृष्ठ 1309
3. कौर सुनंत – समकालीन हिंदी कहानी रू स्त्री–पुरुष संबंध– पृष्ठ 13
4. पी. सुप्रिया – कृष्णा सोबती की कहानी कला– पृष्ठ 24
5. कौर सुनंत– समकालीन हिंदी कहानी रू स्त्री–पुरुष संबंध– पृष्ठ 14
6. सं. यादव राजेन्द्र– हंस, मार्च– 2000 – पृष्ठ 13
7. सोबती कृष्णा– हम हशमत, भाग–1, पृष्ठ 255
8. सं. सचदेव विश्वनाथ– नवभारत टाइम्स– नवंबर– २०००, पृष्ठ, 5
9. सं. श्रोत्रिय प्रभाकर– वागर्थ– जून, 2000 – पृष्ठ 21
10. डॉ. पॉल ब्रिजिट – कृष्णा सोबती रू व्यक्ति एवं साहित्य – पृष्ठ 157 158
11. कर , चित्तरंजन – 2018, प्रारंभिक शैली विज्ञान – रायपुर रू शोध वं अनुसंधान विकास केन्द्र।

12. गुरु , कामता प्रसाद – 2018, हिंदी व्याकरण – जयपुर रू पंचशील प्रकाशन।

13. गोस्वामी , कृष्ण कुमार – 2017, शैली विज्ञान और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा – दिल्ली रू अभिव्यक्ति प्रकाशन।

14. तिवारी , भोलानाथ – 2017, व्यवहारिक शैली विज्ञान – दिल्ली : शब्दकार प्रकाशन।

15. नेशनल पब्लिशिंग हाउस पाण्डेय , 2016, ' शैली और ' शैली विज्ञान – दिल्ली : वाणी प्रकाशन।

16. प्रकाश , राजीव – 2013, शैली विज्ञान और पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य शास्त्र – जयपुर : राजस्थान अकादमी।

17. प्रसाद , वासुदेव नंदन – 2014, आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना – दिल्ली : भारती प्रकाशन।

18. बैरागी , लक्ष्मी लाल – 2014, हजारी प्रसाद द्विवेदी के कृतित्व का ' शैली का वैज्ञानिक अध्ययन – जयपुर : संधी प्रकाशन।

19. मिश्र , विद्या निवास – 2014, रीति विज्ञान – दिल्ली : राधा कृष्ण प्रकाशन।

20. रावत , चंद्रभान एवं सिंह , दिलीप – 2014, शैली तत्व सिद्धांत और व्यवहार दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस।